Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 15, Issue No. 11, November-2018, ISSN 2230-7540

भारतीय काव्यशास्त्र में रस की अवधारणा

Bhaskar Mishra*

Research Scholar, Visva Bharati University, West Bengal

सार – *भारतीय संस्कृत में रस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है- "रस्यते आस्वाघते इति रसः" अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाए, वही रस है-अथवा "सते इति रसः" अर्थात् जो बहे, वह रस है। इस प्रकार रस की दो विशेषताएँ लक्षित होती हैं- आस्वाद्यत्व और द्रवत्व। हमारे आदि ग्रंथ वेद, उपनिषद और पुराणों में "स" शब्द का प्रयोग व्यवहारिक जीवन के लिए मिलता है काव्यानन्द के अर्थ में नहीं। तैतिरी योपनिषद की मान्यता है कि वह अर्थात् 'ब्रह्म' निश्चय ही रस है और जो उस रस को प्राप्त करे उसे आनन्द की अनुभूति होती है उपर्युक्त सभी प्रयोगों से स्पष्ट है कि रस का मूल अर्थ कदाचित् द्रवरूप वनस्पति-सार ही था। यह द्रव निश्चय ही आस्वाद-विशिष्ट होता था - अतः एव। "आस्वाद" रूप में भी इसका अर्थ-विकास स्वतः ही हो गया, यह निष्कर्ष सहज निकाला जा सकता है। सोम नामक औषधि का रस अपने आस्वाद और गुण के कारण आर्यों को विशेष प्रिय था, अतः सोमरस के अर्थ में रस का प्रयोग और भी विशिष्ट हो गया। अत: सोमरस के संसर्ग से रस की अर्थ-परिधि में क्रमशः शक्ति, मद और अंत में आह्लाद का समावेश हो गया। आह्लाद का अर्थ भी सूक्ष्मतर होता गया - वह जीवन के आहलंद से आत्मा के आल में परिणत हो गया और वैदिक युग में ही आत्मानंद का वाचक बन गया, अथर्ववेद में उपर्युक्त अर्थ-विकास के स्पष्ट प्रभाव मिल जाते हैं।*

----------X----------

परिचय

भारतीय सौन्दर्य-दर्शन का मूल आधार है काव्यशास्त्र। यद्यपि दर्शन में भीय विशेषकर आनंदवादी आगमन-ग्रन्थों में, आत्म-तत्व के व्याख्यान के अन्तर्गत सौन्दर्य की अनुभूति के विषय में प्रचुर उल्लेख मिलते हैं, फिर भी सौन्दर्य के आस्वाद और स्वरूप का व्यवस्थित विवेचन काव्यशास्त्र में ही मिलता है। आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से सौन्दर्य-चेतना एक मिश्रवृत्ति है। इसके योजक तत्व हैं। (१) प्रीति अर्थात् आनंद और (२) विस्मय। भारतीय काव्यशास्त्र इस रहस्य से आरंभ से ही अवगत था : उसके दो प्रतिनिधि सिद्धांत रस और अलंकार क्रमशः प्रीति और विस्मय के ही शास्त्रीय विकास हैं । सौन्दर्य के आस्वाद में निहित प्रीतितत्व का प्राधान्य रस-सिद्धांत में प्रस्फुटित और विकसित हुआ, और उधर विस्मय-तत्व की प्रमुखता ने वक्रता, अतिशय आदि के माध्यम से अलंकारवाद का रूप धारण किया । इन दोनों में रस-सिद्धांत केवल कालक्रम की दृष्टि से ही नहीं वरन् प्रभाव और प्रसार की दृष्टि से भी अधिक महत्वपूर्ण है - वास्तव में भारतीय काव्यशास्त्र की आधारशीला यही है।

1. रस शब्द का अर्थ-विकास:

रस भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम शब्दों में से है। सामान्य व्यवहार में इसका चार अर्थों में प्रयोग होता हैं:

1. पदार्थों का रस- अम्ल, तिक्त, कषाय आदिय
2. आयुर्वेद का रस,
3. साहित्य का और इससे मिलता-झुलता रस,
4. मोक्ष या भक्ति का रस ।

प्राकृतिक (पार्थिव) रस में रस का अर्थ है पदार्थ (वनस्पति) आदि को निचोड़कर निकाला हुआ द्रव जिसमें किसी न किसी प्रकार का स्वाद होता है। इस प्रसंग में रस का प्रयोग पदार्थ-सार और आस्वाद दोनों अर्थों में होता है: पदार्थ का सार (या सार-भूत द्रव) भी रस है और उसका आस्वाद भी रस है। आगे चलकर ये दोनों अर्थ स्वतंत्र रूप में विकसित हो गये। आयुर्वेद में रस का अर्थ है पारद - यह प्राकृतिक रस का ही अर्थ-विकास है। यहाँ पदार्थ-सार तो अभिप्रेत है ही, किन्तु उसके साथ उसके आस्वाद का नहीं वरन् गुण (शक्ति) को ग्रहण किया जाता है। पदार्थ-रस जहाँ आस्वाद-प्रधान है, वहाँ आयुर्वेद का रस शक्ति प्रधान है। आयुर्वेद में रस का एक और अर्थ है देह-

www.ignited.in

धातु - अर्थात् शरीर में अन्तर्भूत ग्रंथियों का रस जिस पर शरीर का विकास निर्भर रहता है यहाँ भी शक्ति का ही प्राधान्य है। तीसरा प्रयोग है साहित्य का रस, जहाँ रस का अर्थ है-(१) काव्य-सौन्दर्य, और (२) काव्यास्वाद तथा काव्यानंद भी। मोक्ष-रस या आत्म-रस ब्रह्मानंद अथवा आत्मानंद का वाचक हैय भक्ति-रस का अर्थ भी, सिद्धांत-भेद होने पर, भी मूलतः यही है ।

साहित्य की समीक्षा

शतला महाकाव्य के काव्य शाजीथ अध्ययन के आधार सामान्य रूप से प्रत्येक कवि का काव्य उसके जन्मजात संस्कार, अनुभव एवं ज्ञान-ध्यान का प्रतिफलन होता है। काव्य एवं उसके स्वरूप के विषय में चेतन एवं अवचेतन दोनों में कुछ-न-कुछ आदर्श अवश्य विद्यमान रहते हैं। उन काव्यादर्शों के प्रति कवि की धारणा ही काव्य-सिद्धान्त कहे जाते हैं। प्रो0 आदेश जी ने "शकुन्तला" की रचना महाकाव्य के रूप में की है। उन्होंने किसी सिद्धान्त को लेकर काव्य की रचना नहीं की, किन्तु उनके काव्य के सूक्ष्म अध्ययन एवं अनुशीलन से भारतीय काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों का उद्घाटन सहज ही किया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध विषय के अन्तर्गत 'शकुन्तला' महाकाव्य के काव्यगत मूल्यों को निम्नलिखित परम्परागत शीर्षकों के अन्तर्गत ही विवेचन किया जाएगाः

1. रस सिद्धान्त 2. ध्वनि सिद्धान्त 3. अलंकार सिद्धान्त 4. वक्रोकित सिद्धान्त 5. रीति, वृत्ति और गुण ।

1. रस सिद्धान्तः

भारतीय काव्य शास्त्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विवेच्य है- रस। रस काव्य की आत्मा हैं। समीक्षको ने मूल रूप से इसके निकष पर ही कवियों का मूल्यांकन कर उनकी विभिन्न कोटियाँ निर्धारित की हैं।

रस शब्द आनन्द के अर्थ में प्रचलित है। आनन्द से रस का संबंध भारतीय मनीषियों ने जोड़ा है। भारतीय संस्कृति और साहित्य के चरम विकास से रस संबंधित है।

रस शब्द का अर्थ और स्वरूप

भारतीय जीवन में रस शब्द का प्रयोग सर्वश्रेष्ठ तत्त्व के लिए होता है, जैसे- पदार्थों का रस-फलों का रस, गन्ने का रस, विभिन्न भोज्य वस्तुओं के स्वाद । मीठा, खट्टा, कड़वा, नमकीन, तीखा, कसैला। इन सब का मिला-जुला चटपटा रस तैयार होता है। इन भोज्य रसों को षड्रस भी कहते हैं। इन रसों का आस्वादन जीभ से होता है। इसलिए जीभ को रसना कहते हैं।

आयुर्वेद में भी रस शब्द का प्रयोग होता है। विभिन्न द्रव्यों के सार तत्त्वों को रस कहते हैं। जैसे- सुवर्णरस, मौवतक रस आदि। साहित्य में भी रस शब्द का प्रयोग होता है। साहित्य के श्रवण, पठन से उत्पन्न होने वाला मानसिक आनन्द रस कहलाता है। भरत मुनि ने इसका विवेचनद्दप्रवर्तन किया है। यहाँ इसी "स" का विवेचन अपेक्षित है।

भरतमुनि ने नाटक के संदर्भ में, नाटक से प्राप्त होने वाले आनन्द को लेकर अपने ग्रंथ "नाट्यशास्त्र में सांगोपांग विवेचन किया है। रस सम्बन्धी मान्यताएँ भरतमुनि का रससूत्र" कहलाई। भरतमुनि रस के संबंध में वैज्ञानिक विवेचना करने वाले पहले आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए। भरतमुनि का रस

संबंधी प्रसिद्ध सूत्र इस प्रकार है – 'विभावानुभावव्य भिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः। अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचार (संचारी) भावों के संयोग से रस की निष्पति होती है।

रस आस्वाद्य पदार्थ है। रस का आस्वादन इस प्रकार किया जाता है जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से भोज्य रस की निष्पति होती है। जिस प्रकार गुड़ादि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों से षड्वादि रसों का निवर्तन होता है, उसी प्रकार नाना भावों के उपगत होने पर स्थायी भाव रस रूप को प्राप्त होते हैं।

रस का आस्वादन इस प्रकार होता है- जिस प्रकार प्रसन्नचित व्यक्ति नाना प्रकार के व्यंजनों से सुस्वाद भोजन का उपभोग करते हुए रसों का आस्वादन करते हुए हर्षादि का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार सहृदय सामाजिक अभिनय द्वारा व्यंजित नाना भावों तथा वाचिक, आंगिक और सात्विक अभिनयों से सम्पृक्त स्थायी भावों का आस्वादन करता हुआ हर्षादिका अनुभव करता है। नाटक के माध्यम से आस्वादित होने के कारण इन्हें नाट्य रस कहा जाता है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में इस बात को इन शब्दों में कहा है 'विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणी तथा।

रसतामेति इत्यादिः स्थायी भावः सचेतसाम्।। अर्थात् सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित, वासनारूप रति आदि स्थायी भाव ही अनुभाव और संचारी भावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर रस के स्वरूप को प्राप्त करते हैं।

www.ignited.in

रस सामगी

रस के प्रमुख चार अव्यय हैं- स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव या संचारी भाव ।

- **स्थायी भाव**

जो भाव वासनात्मक होकर चित में चिरकाल तक अचंचल रहता है, उसे स्थायी भाव कहते हैं। दूसरे शब्दों में आश्रय के हृदय में सुप्तावस्था में अवस्थित जन्मजात प्राप्त हुए भावों को स्थायी भाव कहते हैं। स्थायी भाव ही रस दशा को प्राप्त होते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने स्थायी भावों को रस रूप अंकुर का मूल या कंद कहा है।

स्थायी भाव जन्मजात होते हैं और सभी प्राणियों में वासनारूप में होते हैंय

जैसे मिट्टी में गंध। स्थायी भाव की पाँच विशेषताएँ हैं- 1) आस्वाद्यता 2) उत्कटता 3) सर्वजन सुलभता 4) पुरुषार्थ उपयोगिता 5) औचित्यता। इन्हीं विशेषताओं के कारण स्थायी भाव संवेद्य होते हैं।

स्थायी भावों की संख्या के बारे में विद्वानों में एकमत नहीं है। प्रचलित मान्यता के अनुसार स्थायी भाव नौ हैं। जिनमें नवरस सम्पन्न होते हैं। स्थायी भाव हैं- रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य और निर्वेद । ये ही स्थायी भाव परिपुष्ट होकर क्रमशः शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त रसों में परिणत हो जाते हैं।

- **विभाव**

स्थायी भावों के उद्बोधक कारण को विभाव कहते हैं। सहृदय के हृदय में संस्कार रूप से स्थित स्थायी भाव को जागृत करने वाले कारणरूप व्यक्ति, वस्तु अथवा बाहरी विकार को विभाव कहते हैं। विभाव दो प्रकार के काम करते हैं। एक भावों को जगाते हैं, दो भावों को उद्दीप्त करते हैं। इस कारण विभाव के दो प्रकार बनते हैं। क)आलम्बन विभाव ख) उद्दीपन विभाव

- **अनुभाव**

मनोगत भाव को व्यक्त करने वाली शारीरिक चेष्टाएँ अनुभाव कहलाती हैं। अनुभाव शब्द अनुभव से बना है। “अनु” का अर्थ है पीछे आने वाला या पीछे होने वाला।

सुन्दरी शकुन्तला (आलम्बन) द्वारा दुष्यन्त (आश्रय) के मन में रति (स्थायी भाव) का जगना और उद्दीपन खिला उद्यान, एकांत के द्वारा दुष्यन्त के हाथ पकड़ना, रोमांचित होना आदि शरीर के लक्षण (अनुभाव) रति का कार्यरूप फल है।

इस प्रकार आलम्बन उद्दीपनादि अपने-अपने कारणों से उत्पन्न भावों को व्यक्त करने वाली लोक में जो-जो कार्यरूप चेष्टाएँ होती हैं, वे काव्य-नाटकादि में निबद्ध होकर अनुभाव कहलाती हैं। अनुभाव चार प्रकार के होते हैं 1)कायिक 2) वाचिक 3) आहार्य 4) सात्त्विक ।

- **व्यभिचारी**

भाव हृदय में नित्य विद्यमान रहने वाले भावों को स्थायी भाव कहते हैं। कुछ भाव ऐसे भी होते हैं, जो अस्थिर, अस्थायी अर्थात् संचरणशील होते हैं। उन्हें व्यभिचारी या संचारी भाव कहते हैं। स्थायी भावों को पुष्ट करने के लिए निमित्त अथवा सहायक कारण रूप में अल्पकालिक भाव संचारी भाव कहलाते हैं। रसों के स्थायी भाव निश्चित होते हैं। उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

जैसे - श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है। इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। परंतु संचारी के संबंध में ऐसा कोई नियम नहीं है। एक ही संचारी भाव अनेक रसों में हो सकता है। जैसे- चिंता संचारी भाव, शृंगार, वीर, करुण और भयानक आदि अनेक रसों में पाया जाता है। संचारी भावों की संख्या तैतीस मानी गई है। अतः रस नौ हैं और सहृदय के हृदय में स्थायी भाव आलम्बन या उद्दीपन रूप से उद्भुत होते हैं। “शकुन्तला” महाकाव्य में नवरसों में से कितने रस विद्यमान हैं। इसका अध्ययन आवश्यक है। नवरसों का विस्तार से अध्ययन प्रस्तुत महाकाव्य के संदर्भ में आगे के अध्याय में किया जाएगा।

2. ध्वनि सिद्धान्त

भारतीय काव्यालोचन के इतिहास में काव्य की आत्मा के रूप में ध्वनि की प्रतिष्ठा का श्रेय नवीं शताब्दी के आनन्दवर्धन को प्राप्त हैं, लेकिन ध्वनि सिद्धान्त का समारंभ किसी अज्ञातनाम ध्वनिकार ने किया था, जिसके ग्रंथ “ध्वन्यालोक” की विभिन्न वृत्तियों को आनन्दवर्द्धन ने रचा था। इस महनीय ग्रंथ की कारिकाएँ अनाम ध्वनिवादी आचार्य ने लिखी थी, जबकि उसकी वृत्तियों और उदाहरणों का समायोजन आनन्दवर्द्धन ने किया। आनन्दवर्द्धन को यह श्रेय दिया जा सकता है कि उन्होनें ध्वनि सिद्धान्त को सम्प्रदाय के रूप में पल्लवित किया और “ध्वन्यालोक” के माध्यम से

ध्वनि सिद्धान्त की मूलभूत स्थापनाओं की अवतारणा की। भारतीय साहित्य शास्त्र में आनंदवर्द्धन का वही स्थान है, जो ग्रीक साहित्यलोचन में लौंजाइनस का है। लौंजाइनस की तरह आनंदवर्द्धन ने भी सृष्टि के श्रेष्ठतम प्राणी और मनुष्य की सर्वोच्च शक्ति के प्रतिनिधि के रूप में कवि और उसकी प्रतिभा की अभ्यर्थना की। इस वैचारिकता का आधार यही है कि आनंदवर्द्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा का गौरव दिया और ध्वनि की एक विशिष्ट सत्ता की परिकल्पना की। अपने ध्वनि संबंधी चिन्तन का श्री गणेश करते हुए आनंदवर्द्धन ने लिखा है कि काव्य के आत्मभूत जिस तत्व को विद्वान ध्वनि कहते हुए आए हैं और कुछ लोग उसके अभाव, उसकी भुक्ति, उसके रहस्य को वाणी का अनिर्वचनीय विषय बताते हैं, उसी ध्वनि के स्वरूप को हम निरूपण करते हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि आनन्दवर्द्धन के पहले से ध्वनि सबंधी चर्चा प्रारम्भ हो गई थी। भरत, भामह, दंडी, वामन और उद्भट के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में ६ वनि का विवेचन नहीं है, लेकिन इन्हीं अलंकारिकों के आधार पर आनंदवर्द्धन ने ध्वनि विरोधियों के तीन मतों का संकेतन किया है। आनन्दवर्द्धन के अनुसार अभाववादी, लक्षणावादी और अनिर्वचनीयतावादी- इन तीनों ही कोटियों के समीक्षकों ने ध्वनि को शोभादायक धर्म अथवा काव्य का केन्द्रीय तत्त्व नहीं माना है।

अनुसंधान विधि

रस परिभाषा-स्वरूप

भारतीय काव्य शास्त्र की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है- रस। श्रस शब्द रस् धातु और अच् (वा "ध") प्रत्यय से निष्पन्न है। संस्कृत में रस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है- "स्सते इति रसः" अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाए, वही रस है-अथवा "सते इति रसः" अर्थात् जो बहे, वह रस है। इस प्रकार रस की दो विशेषताएँ लक्षित होती हैं-आस्वाद्यत्व और द्रवत्व। हमारे आदि ग्रंथ वेद, उपनिषद और पुराणों में "स" शब्द का प्रयोग व्यवहारिक जीवन के लिए मिलता है काव्यानन्द के अर्थ में नहीं । तैतिरी योपनिषद की मान्यता है कि वह अर्थात् "ब्रह्म" निश्चय ही रस है और जो उस रस को प्राप्त करे उसे आनन्द की अनुभूति होती है

"सोवैरसः रसंचेवायं लब्ध्वा नन्दी भवति।" साहित्य में यही आनन्द रस है। दूसरे शब्दों में काव्य भावन से प्राप्त होने वाला आनंद रस है। रस की इस रूप में परिकल्पना भारतीय काव्य-शास्त्र की मौलिक देन है। रसवादी आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा घोषित करते हुए उसे अत्यंत उच्च स्थान प्रदान किया है। उन्होंने उसी काव्य को काव्य कहा है, जो रसात्मक है।

आचार्य भरत ने सर्वप्रथम नाट्य के संदर्भ में रस मत का उपस्थापन किया था। उन्होंने लिखा है 'विभावानुभावव्याभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पतिः। अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पति होती है। काव्य के पढ़ने या नाटक के देखने से कवि के मूल भावों तथा मूल पात्र के भावों का जब विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के साथ संयोग होता है तब रस की व्यंजना होती है।

आगे चलकर यही व्यापक काव्य-सिद्धान्त रस-सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। आचार्य मम्मट ने रस की परिभाषा देते हुए कहा है

विभावानुभावास्तत्र कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।। व्यक्तः सतौर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः ।। अर्थात् ललना, उद्यानादि विभाव, कटाक्ष, भुजाक्षेप आदि अनुभाव तथा हर्षादि व्यभिचारियों से परिपुष्ट रति आदि स्थायी भाव ही सहृदय में रस की संज्ञा ग्रहण कर लेता है।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में श्रस अखंड, स्वप्रकाशआनन्दमय चिन्मये, वेदान्तर स्पर्श शून्य, ब्रह्म स्वाद-सहोदर और लोकोत्तर चमत्कार प्राण होता है।"

अतः कहा जा सकता है कि जब स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट होकर अपनी परिपक्वावस्था को पहुँचता है, तब उसके आस्वादन से सहृदय जनों के हृदय में जिस आनन्द की अनुभूति होती है, वही रस है।

उपर्युक्त परिभाषा के विवेचन से प्रकट होता है कि रस के चार प्रमुख अवयव हैं- स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी या संचारी भाव ।

1. स्थायी भाव:

जो भाव वासनात्मक होकर चित्त में चिरकाल तक अचंचल रहता है, उसे स्थायी भाव कहते हैं। विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव के चित्ताकर्षक संयोग से स्थायी भाव रस रूप में व्यंजित होता है। स्थायी भावों की संख्या नौ मानी गई है। वे हैं- रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद। ये ही स्थायी भाव परिपुष्ट होकर क्रमशः श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त रसों में परिणत हो जाते हैं।

www.ignited.in

2. विभाव:

जिन कारणों के द्वारा रति आदि स्थायी भाव जागरूक होकर रस का रूप धारण कर लेते हैं, उन्हें विभाव कहते हैं। संक्षेप में भाव के जो कारण होते हैं, विभाव कहे जाते हैं ।

विभाव के दो प्रकार होते हैं- 1) आलम्बन विभाव 2) उद्दीपन विभाव । प्रत्येक रस के आलम्बन और उद्दीपन भिन्न-भिन्न होते हैं। 1. आलम्बन विभाव : जिन पर आलम्बित होकर स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं, उन्हें आलम्बन विभाव कहते हैं। आलम्बन विभाव के दो रूप हैं-आश्रय और आलम्बन। जिसके हृदय में रति आदि भावों का जागरण होता है, वे आश्रय हैं। जैसे नायक या नायिका तथा जिनके कारण रति आदि स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं। वे आलम्बन हैं

3. उद्दीपन विभाव:

उद्दीपन का शाब्दिक अर्थ है- उद्दीप्त करना, तेज करना। अर्थात् जो कारण रति आदि स्थायी भावों को उद्दीप्त करते हैं, उद्दीपन विभाव कहलाते हैं । ये उद्दीप्न भी विभिन्न रसों में भिन्न भिन्न होते हैं। जैसे-श्रृंगार रस में उद्यान, चाँदनी, षड्ऋतु आदि उद्दीपन हैं।

4. अनुभाव:

भावोद्रेक होने पर आश्रय जो क्रियाएँ करता है, वही अनुभाव कहलाते हैं। अर्थात् जो भावों के कार्य हैं तथा जिनके द्वारा रति आदि भावों का ज्ञान होता है। अनुभाव चार प्रकार के होते हैं- 1) कायिक 2) वाचिक 3) आहार्य 4) सात्त्विक"7

1. कायिक: कटाक्ष आदि कृत्रिम आंगिक चेष्टाओं को कायिक अनुभाव कहते हैं ।

2. वाचिक: जब भाव वाणी से प्रकट होते हैं। उन्हें वाचिक अनुभाव कहते हैं।

3. आहाय: आरोपित या कृत्रिम वस्य रचना को आहार्य कहते हैं।

4. सात्त्विक: शरीर के अकृत्रिम अंग विकार को सात्त्विक अनुभाव कहते हैं, यथा - कंप, स्वर-भंग, अश्रु आदि ।

5. संचारी भाव: 'संरचण शील अर्थात् अस्थिर मनोविकारों या चित्तवृत्तियों को संचारी भाव कहते हैं। ये भाव रस के उपयोगी होकर जल तंरग की भाँति उसमें संचरण करते हैं। इससे ये संचारी भाव कहे जाते हैं। इनका दूसरा नाम व्यभिचारी भाव है।" ये संचारी भाव भी रस की तरह ही ध्वनित या व्यंजित होते हैं। इनकी संख्या तैंतीस मानी गई है- निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, आलस्य, श्रम, दैन्य, चिंता, मोह, स्मृति, स्वप्न, धृति, ब्रीड़ा, चपलता, हर्ष, विषाद, त्रास, आवेग, जड़ता, गर्व, औत्युक्य, निद्रा, अपस्मार, विबोध, अमर्श, उग्रता, अवहित्था, उन्माद, व्याधि, मति, वितर्क, मरण।

इन्ही विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव के चिताकर्षक संमजन से स्थायी भाव रस-रूप में व्यंजित होता है। सुसंस्कृत सहृदय काव्यभावन के समय उससे तादात्म्य स्थापित कर अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभुति करता है।

रस का महत्व:

भारतीय काव्य शास्त्र में रस का अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। आचार्य भरत ने तो यहाँ तक कहा है कि-श्न्ही रसाइते कश्चिदर्थः प्रवत्तते" अर्थात् कोई भी काव्य रसहीन नहीं होना चाहिए। आचार्य विश्वनाथ ने श्वाक्यं रसात्मकं काव्यम्श् कहकर रसमय वाक्य को काव्य कहना स्वीकार किया। इसी तरह पंडित राज जगन्नाथ ने रमणीयार्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा।" ये काव्य के प्राण हैं। लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि करना ही काव्य का चरम ध्येय है। देखा जाए तो भारतीय जीवन दर्शन रसवाद की आधारशिला पर ही प्रतिष्ठित है। "सो वै सः" रस को आनन्द स्वरूप ब्रह्मानन्द की उपलब्धि होती है। यह आनन्द ब्रह्मानन्द के समान ही रसास्वाद होता है- स्वतः ब्रह्मानन्द नहीं। इसीलिए इसे "ब्रह्मानन्द सहोदर" कहा जाता है। यह रस अलौकिक चमत्कार से युक्त होता है। वाग्वैदध्य की-वाक्चातुरी की अभिव्यंजना-कौशल की प्रधानता रहने पर भी रस ही काव्य का जीवन है।"

"सायन" की भूमिका में रस की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "रस अलौकिक चमत्कार कारी उस आनन्ददविशेष का बोधक है, जिसकी अनुभूति सहृदय के हृदय को दुत, मन को तन्मय, हृदय व्यापारों को एकतान, नेत्रों को जलाप्लुत, शरीर को पुलकित और वचन-रचना को गद्गद् रखने की क्षमता रखती है। यही आनन्द काव्य को उपादेय है और इसी की जागृति वाड्मय के अन्य प्रकारों से विलक्षण काव्य नामक पदार्थ की प्राण-प्रतिष्ठा करती है।"

वस्तुतः रस का महत्त्व अन्यतम है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक रस को निरन्तर मान्यता मिली है। ध्वनिकार श्री आनन्दवर्द्धनाचार्य ने भी काव्य में रस की उपयोगिता सिद्ध करते हुए लिखा है:

दृष्टपूर्वा अपि यर्थाः काव्ये रस परिग्रहात्। सर्वेनवा इवाभवन्ति मधुमास इव दुआः।। अर्थात् जिस प्रकार मधुमास में वृक्ष अधिक चित्ताकर्षक और नवीन दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार काव्य में रस का आश्रय ग्रहण कर लेने से पूर्वदृष्ट अर्थ भी नवीन और सौम्य रूप धारण कर लेते हैं। न केवल रसवादी आचार्यों ने, बल्कि अन्य सम्प्रदाय वालों ने भी रस की महत्ता की अवमानना नहीं की है। अलंकार वादी आचार्य भामह रस विरोधी थे, पर उन्होंने रस का अन्तर्भाव "सवत", अलंकार में कर अप्रत्यक्ष रूप से रस को मान्यता दी है। इसी तरह, दंडी ने भी, "कामे सर्वोप्यलंकारों रसं अर्थे निषिचति" कहकर रस के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है। अभिप्राय यह है कि रस को प्रायः सभी काव्य सिद्धान्तों में स्वीकृति मिली है। रीति में कांति गुण दीप्तिरसत्व है। वक्रोक्ति में प्रबन्ध-वक्रता आदि के प्रसंग में रसमयता की ओर ही संकेत किया गया है। ध्वनि में रस ध्वनि ही सर्वश्रेष्ठ ध्वनि है तथा औचित्य में रसौचित्य ही काव्य का प्राण है।"

आचार्य मम्मट ने अपने काव्य के लक्षण में यद्यपि 'दोषरहित' और गुणयुक्त' शब्द और अर्थ को प्रधानता दी है, तथापि उन्होंने जिन गुणों और दोषों का विवेचन किया है, वह रसों के ही संबंध में है। गुणों को उन्होंने रस के "उत्कर्षहेतवः" कहा है।"इससे स्पष्ट है कि मम्मट ने रस को ही काव्य की आत्मा माना है।

भारतीय काव्य शास्त्र में पांच मुख्य संप्रदाय अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और रस हैं। इन्हें काव्य के शरीरवादी और आत्मवादी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। इनमें प्रथम तीन-अलंकार, रीति, और वक्रोक्ति काव्य को शरीरवादी रूप तथा अन्तिम दो-ध्वनि और रस- आत्मवादी रूप हैं।

अलंकार, रीति और वक्रोक्ति अपने व्यापक रूप में अभिव्यंजना शैली में अन्तर्मुक्त किए जा सकते हैं। अन्तिम दोनों का समन्वय रस सिद्धान्त में किया जा सकता है। क्षेमेन्द्र के औचित्य सिद्धान्त का आत्म पक्ष रस- सिद्धान्त में तथा रचना-विधान सम्बन्धी औचित्य अभिव्यंजना पक्ष में समाहित किया जा सकता है। इस प्रकार काव्य के दो प्रमुख पक्ष हुए हैं- शरीरवादी या बाह्य पक्ष तथा आत्मवादी या अंतरण पक्ष। काव्य में दोनों का महत्त्व है। प्राचीन आचार्यों ने एक-दूसरे के मत या सम्प्रदाय का विरोध करते हुए भी उसकी महता का किसी-न-किसी रूप में प्रतिपादन और समर्थन अवश्य किया है। ऐसा इसलिए कि आरम्भ में आचार्यों में समन्वय का आग्रह नहीं था, किंतु धीरे-धीरे काव्य के सब तत्त्वों में समन्वय स्थापित करने की आवश्यकता अनुभूत हुई। आचार्य विश्वनाथ ने इन सब का समन्वय करते हुए लिखा है- शब्द और अर्थ काव्य -पुरुष के शरीर हैं, रस और भावादि उसकी आत्मा, शौर्य आदि के सदृश माध् र्य, ओज और प्रसाद उसके गुण हैं। कणत्व आदि के समान श्रुति कटुत्व आदि दोष हैं। वैदर्भी आदि रीतियाँ शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों का गठन हैं, तथा उपमादि अलंकार कटक, कुंडालादि के तुल्य होते हैं।ष्

काव्य में रस का महत्त्व अक्षुण्ण है। रस के ही कारण एक ओर तो भावाभिव्यक्ति में कोमलता और सरसता रहती है और दूसरी ओर सहृदय के हृदय को आकाश टकराने की प्रबल क्षमता होती है। दूसरे शब्दों में, रस सहृदय-संवेग होता है, काव्य-विषय चाहे सुखात्मक हो या दुखात्मक, वह ऐसे परिष्कृत एवं सुरूचिपूर्ण ढंग से उपस्थित होता है कि अनुभूति का स्वरूप आनन्दमय हो जाता है। यह भाव सर्व-साधारण तथा समस्त सम्बन्धित होता है। जब इस अपरिमित भाव का उन्मेष होता है, तो सुसंस्कृत सहृदय उससे तादात्म्य स्थापित कर ही लेता है तथा उसे एक विशेष तरह की आह्लादमय अनुभूति होती है। रस ही एक ऐसा आयाम है, जिसमें कवि, काव्य एवं सहृदय तीनों का महत्त्व है। कवि की विषयानुभूति उपयुक्त विशेष प्रक्रिया द्वारा ही सहज संवेद्य बन जाती है। अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी के सम्यक् संयोजन से स्थायी भाव रस रूप में परिणत हो जाता है।

रस के भेद:

स्थायी भाव ही अपनी परिपक्वावस्था में रस है। आचार्यों ने नौ स्थायी भाव माने हैं और उन्हीं के आधार पर नव रस की कल्पना की गई है। यथा, श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त कतिपय आचार्यों ने दसवा रस "वात्सल" को माना है। जिसका स्थायी भाव 'वात्सल्य है। उन आचार्यों में महाराजा भोज और आचार्य विश्वनाथ प्रभु उसी तरह प्रेयस अलंकार से भक्ति रस की उद्भावना की गई है। अब तक शान्त रस में ही भक्ति का अन्तर्भाव किया जाता रहा था। पर भक्ति के व्यापक और परिपुष्ट चित्रण एवं उनके स्वतंत्र स्वाद्यत्व को देखते हुए उसे भी एक पृथक रस मान लिया है। गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रतिष्ठित आचार्य रूप गोस्वामी और मधुसूदन सरस्वती ने भक्ति रस की पृथकता का प्रबल समर्थन किया।

आचार्य रूप गोस्वामी ने भक्ति के एक प्रमुख तत्त्व "माधुर्य के आधार पर मधुर रस की कल्पना की। 'मधुर रस' कुछ नया

www.ignited.in

नहीं है। श्रृंगार रस और मधुर रस में अपूर्व साम्य है। कदाचित् इसीलिए मधुर की व्यंजना अलौकिक श्रृंगार के रूप में की जाती रही।

अतः मुख्य तौर से रस नौ ही हैं। इसलिए हम "आदेश" के महाकाव्य शकुन्तला का अध्ययन आधारभूत नौ रसों के केन्द्र में मानकर ही करेंगे। शकुन्तला महाकाव्य में रस ।

आदेश जी ने अपने महाकाव्य "शकुन्तला" को श्रृंगार रस प्रधान बनाया है। किंतु ऐसा नहीं है कि इसमें अन्य नहीं आए हैं। स्वयं "आदेश" जी का कथन है- "शकुन्तला शृंगार रस प्रधान काव्य है। एतदर्थ इसमें श्रृंगार रस के प्रायः समस्त अंगों का परिपाक करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। संयोग-वियोग की अवस्थाएँ, नख-शिख, वर्णन, अभिसार, मान-मनुहार, नायिका-भेद, षड्ऋतु वर्णन आदि के साथ-साथ शेष सभी रसों की झलक इसमें मिलेगी। रसानुभूति की दिशा में भाव-विभाव-अनुभाव एवं संचारी भावों की अभिव्यक्ति भी दृश्यमान होगी । वीर, शान्त एवं श्रृंगार रस का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना जाता है। इस काव्य का शुभारम्भ ही एक निर्जन आश्रम के शान्त वातावरण में वीर रस से होता है। इस कृति में श्रृंगार के साथ-साथ वात्सल्य तथा निर्वेद को भी पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया गया है। प्रथम सर्ग में ही वीर रस से सम्बन्धित भयानक, रौद्र, वीभत्स आदि रसों का परिपाक भी इसमें प्राप्त होगा। अन्य रसों के दर्शन भी इसमें यत्र-तत्र होंगे। इस प्रकार यह कहना गलत न होगा कि शकुन्तला महाकाव्य में यत्र-तत्र सभी रसों का समायोजन किया गया होगा। किंतु इसका अंगीरस श्रृंगार रस ही होगा।

उद्देश्य:

1) महाकाव्य का उद्देश्य धर्मार्थ, काममोक्ष की प्राप्ति मानी गई है।

2) इसका विश्लेषण करें तो हम देखते हैं कि नायक या तो परोपकार के कार्य या सिद्धान्त की रक्षा के लिए अपने जीवन को व्यतीत करता है या विजय द्वारा किसी समृद्धि को प्राप्त करता है।

3) इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिए संघर्ष, साधना, चरित्र विकास या अन्य उच्च गुण आवश्यक हैं

4) इनका चित्रण विभिन्न परिस्थियितों की पृष्ठभूमि में किया जाता है।

5) आधुनिक महाकाव्यों में वर्तमान जीवन की समस्याओं का भी चित्रण व समाधान होना चाहिए।

उपसंहार

साहित्य कार नवसृष्टि का रचयिता होता है। प्रो0 हरिशंकर आदेश प्रवासी महाकवि हैं। आप चार दशकों से अधिक समय से विदेश में रहकर साहित्य सृजन कर रहे हैं। इनकी लेखनी से अनुराग, शकुंतला, महारानी दमयन्ती और निर्वाण चार महाकाव्य के साथ शताधिक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। कवि आदेश द्वारा रचित शकुन्तला महाकाव्य एक श्रेष्ठ रचना है। जिसका प्रवासी भारतीय महाकाव्यों में अग्रणी स्थान है। इसका सृजन कवि ने भारतीय काव्य-शास्त्रीय सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर किया है। इस महाकाव्य में लगभग सभी काव्य-सिद्धान्तों का निर्वहन हुआ है। भारतीय काव्य-शास्त्र के मुख्य सिद्धान्त रस, ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति और रीति, वृत्ति, गुण हैं। भारतीय काव्य-शास्त्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण रस सिद्धान्त हैं। रस ही काव्य की आत्मा माना गया है। काव्य-शास्त्रीय परम्परा में ध्वनि सिद्धान्त का भी विशेष महत्त्व है। आनन्दवर्द्धन ने तो इसकी स्थापना करते हुए इसे काव्य की आत्मा माना है। काव्य की आत्मा के संदर्भ में जिन सिद्धान्तों में विवाद रहा उनमें अलंकार सिद्धान्त का नाम भी है। आचार्य भामह ने तो अलंकार को ही काव्य की आत्मा माना है। इसी दिशा में आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति सिद्धान्त की स्थापना की है उन्होंने वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा माना है। काव्य की आत्मा के विवाद को एक नई दिशा आचार्य वामन ने यह कहकर दी कि काव्य में रीति का होना आवश्यक है। फिर गुण और वृत्ति पर भी आचार्यों ने बल दिया, किन्तु इन विवादों के बीच में रस को काव्य की आत्मा मान लिया गया।

सदर्भ ग्रंथ सूची

1 सन्दर्भ ग्रंथ सूची क. आधार ग्रंथ 1. शकुन्तला, प्रो0 हरिशंकर आदेश, शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली-32,

2 सं0 - 1997 ख. सहायक ग्रंथ सूची 1. अलंकार मीमांसा, डॉ0 रामचन्द्र द्विवेदी, कवि सभा प्रकाशन, शाहदरा, द्य दिल्ली , सं0 2001

3 आधुनिक हिन्दी काव्य, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद मिश्र, ग्रन्थम् प्रकाशन, कानपुर

4 प्र0 सं0 1966 3. आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन, डॉ0 मनोहर काले

5 हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई, प्र0 सं0 1963 4. कामायनी, जय शंकर प्रसाद, आनंद मार्ग, दरियागंज, दिल्ली, 1991 5. काव्य की भूमिका, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन, पटना, प्र0

6 सं0 1958 6. काव्य-दर्पण, पंडित रामदहिन मिश्र, चैखम्बा प्रकाशन - वाराणसी, सं0 - 1988

7 काव्य प्रकाश, सं0 डॉ0 नगेन्द्र, आचार्य मम्मट, ज्ञानमण्डल लिमिटेड

8 प्रकाशन, वाराणसी, सं0 1974 8. काव्य माधुरी, डॉ0 नरेश मिश्र, निर्मल पब्लिकेशन्स, शाहदरा दिल्ली, संस्करण 1998

9. काव्य मीमांसा: कविराज शेखर, सं. पंडित केदारनाथ शर्मा सारस्वत, ज्ञानमण्डल लिमिटेड प्रकाशन, वाराणसी, सं0 1980

10 काव्य सर्जना और काव्यस्वाद, डॉ. वेंकट शर्मा, आत्माराम एंड सन्स प्रकाशन, दिल्ली - 6, प्र0 सं0

11 1973 काव्यांग, डॉ. कृष्णदेव झारी, शारदा प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, प्र0 सं0

12 1991 काव्यादर्श, आचार्य दण्डी, चैखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, सं0

Corresponding Author

Bhaskar Mishra*

Research Scholar, Visva Bharati University, West Bengal

ravimishra973@gmail.com